अभिज्ञानशाकुन्तलम् में लोक-विश्वास एवं मान्यताएँ

आनन्द कुमार*

anandadvait@gmail.com

सार

कोई भी कवि या रचनाकार कालबोध और युगबोध से प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता है। कालबोध एवं युगबोध का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव रचनाकार की लेखनी के माध्यम से अवश्य अभिव्यक्त होता है। फलतः प्रत्येक रचना अपने काल एवं युग में प्रचलित लोकव्यवहार एवं सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों का भी प्रतिविम्बन होता है। कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में भी इस सत्य का दर्शन होता है। प्रस्तुत शोध-लेख के माध्यम से अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में प्रचुर रूप में प्राप्त तत्कालीन समाज में प्रचलित लोकविश्वास एवं मान्यताओं को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है।

मानवजीवन के निर्माण में लोकविश्वासों एवं मान्यताओं का सदा से महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य ही वह स्रोत है जिसके द्वारा तत्कालीन समाज के लोकविश्वास और मान्यताओं की जानकारी प्राप्त होती है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य विशेषतौर से संस्कृत साहित्य में तद्विषयक सामग्री प्रचुरता से प्राप्त है। इस दृष्टि से अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक विचारणीय है। इस नाटक में महाकवि कालिदास ने वैदिककाल से लेकर अपने समय तक जिन शाश्वत, चिरन्तन विचारों और भावों का चित्रण किया है वे सदैव अनुकरणीय रहेंगे।

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला"- यह उक्ति लोकप्रचलित है। अभिज्ञानशाकुन्तल में नायक, नायिका और उनकी विलासिता के वर्णन के साथ ही अन्य पात्रों के विश्वास-मान्यताओं की झलक मिलती है। उच्च एवं धन-सम्पन्न कुलों में लोक-विश्वास के प्रति आस्था मिलती है तो जनसामान्य में भी। आंगिक, मानसिक भाव-विकार, परिवर्तन एवं वस्तु व्यापार को जनसाधारण भावी शुभ-अशुभ के संकेत के रूप में देखता था, इस घटना को लोक-जीवन में शकुन कहा गया। नारी के बाएँ एवं पुरुष के दाएँ अंग में स्फुरण को शुभ तथा इसके विपरीत होने पर अशुभ माना गया है।

अभिज्ञानशाकुन्तलकालीन समाज में स्त्री एवं पुरुषों में शकुन-अपशकुन के प्रति आस्था एवं विश्वास रूपी घटनाएँ तथा उनसे होने वाले लाभ-हानि पर अनेक अवसरों पर प्रकाश डाला गया है। इससे पता चलता है कि उस समय धार्मिक रूप में शकुन तथा अपशकुनों को स्वीकार कर लिया गया था। स्त्री अपने दाएँ अंग का फड़कना अशुभ मानती थी तभी तो पंचम अंक में शकुन्तला अपने दाएं अंग के फड़कने पर शंकित हो जाती है और कहती है कि अरे! मेरे दायीं आंख क्यों फड़क रही है-

"अहो, किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति"।[१]

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

[१] अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास-ग्रन्थावली, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ) पंचम अंक, पृष्ठ ७७

यह शकुन्तला के भावी अनिष्ट की सूचना है। शाप के वशीभूत दुष्यन्त उसे पहचानने से मना कर देता है और स्वीकार नहीं करता। इसी प्रकार प्रथम अंक में जब दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश करता है तब उसकी दाहिनी भुजा में स्फुरण होता है-

"शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र"।।[१]

अर्थात् इस शान्त आश्रमस्थान में मेरी दाहिनी भुजा क्यों फड़क रही है? यहाँ पर इसकी सफलता कहाँ? लेकिन भावी घटनाओं के द्वार सभी स्थानों पर बन जाते हैं। (अर्थात् जो होना होता है वह तो अवश्य ही होता है)। यहाँ पर दुष्यन्त का बाहु-स्फुरण शकुन में उसके विश्वास को दिखाता है। यहां शान्त वन में फलप्राप्ति कहाँ से होगी फिर भी वह शुभ शकुन के द्वारा अपने भवितव्य के प्रति विश्वस्त है। दाहिनी भुजा का फड़कना सुन्दर स्त्री की प्राप्ति का सूचक है। शकुनशास्त्र में भी कहा गया है- "वामेतरभुजस्पन्दो वरस्त्रीलाभसूचकः"।

इसी प्रकार सप्तम अंक में भी मारीच के आश्रम में प्रविष्ट होते समय दुष्यन्त की दाहिनी भुजा में पुनः स्फुरण होता है। वह कहता है, हे भुजा! यहां अपने मनोरथ पूरे होने की कोई आशा नहीं है फिर तुम व्यर्थ ही फड़क रही हो। यह सत्य है जो पहले लक्ष्मी का तिरस्कार करता है उसका कल्याण दुःखरूप में परिवर्तित हो जाता है-

"मनोरथाय नाशंसे किं बाहो! स्पन्दसे वृथा?
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते"।।[२]

भारतीय परम्परा के अनुसार मनुष्य के जीवन में होने वाली घटनाएँ पूर्वनियत होती हैं, जिसके भाग्य में जो लिखा होता है, वह अवश्य होता है। भाग्य को ही दैव, भवितव्य या विधि रूप में जानते हैं। तत्कालीन समाज में दुष्टग्रहों के कारण व्यक्ति के जीवन में अनेक कठिनाइयों के आने की मान्यता प्रचलित थी। दुर्दैव के शमनार्थ, अनिष्ट की शांति के लिए तीर्थयात्रा आदि मांगलिक कार्यों का भी विधान किया जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में ही शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य की शान्ति के लिए महर्षि कण्व सोमतीर्थ पर जाते हैं- "इदानीमेव "दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः"।[३]

अमंगल के निवारणार्थ शकुन्तला को यज्ञीय अग्नि की परिक्रमा के लिए गौतमी द्वारा कहा जाना- "वत्से, इतः सद्यो हुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व"[४] और शकुन्तला के रूग्ण होने पर गौतमी का यज्ञविषयक शान्त्युदक[५] लेकर उसके पास जाना, तत्कालीन धार्मिक अंधविश्वास-मान्यताओं को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त इस नाटक में हमें तत्कालीन समाज में वनस्पतियों में जीव होने की धार्मिक मान्यता के भी दर्शन होते हैं। शकुन्तला

[१] वही, १.१६

[२] वही, ७.१३

[३] वही, प्रथम अंक, पृष्ठ-८

[४] वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ-६३

[५] वही, तृतीय अंक, पृष्ठ-५०

वनस्पतियों के साथ सहोदर[१] के समान ही व्यवहार करती है और वृक्ष लता आदि वनस्पतियाँ भी शकुन्तला के साथ भावनात्मक रूप से जुड़े हुए हैं। चतुर्थ अंक में वृक्षों की शाखाओं से निकले पल्लवों के समान कोमल करतलों वाले, वनदेवताओं द्वारा शकुन्तला के लिए आभूषण प्रदान करने की घटना उसे समय समाज में वृक्षों में देवताओं के निवासस्थान की धार्मिक भावना को प्रदर्शित करती हैं।[२]

शकुन्तला और दुष्यन्त के जीवन में उतार-चढ़ाव वस्तुतः उनके पूर्व-जन्मों का फल है। प्रिय दुष्यन्त की स्मृति में निमग्न शकुन्तला को द्वार पर आये दुर्वासा के आगमन[३] का पता ही नहीं चलता और ऋषि क्रोधित होकर उस शाप दे देते हैं।[४] यह शकुन्तला के ही कर्म का फल है कि उसे दुष्यन्त पहचानने से मना कर देता है और एकमात्र उपाय पहचान-चिह्न अंगूठी भी शक्रावतार[५] में गिर जाती है। सप्तम अंक में भरत जब शकुन्तला से दुष्यन्त के विषय में[६] पूछता है, तब शकुन्तला कहती है- "वत्स! ते भाग्यधेयानि पृच्छ!"[७] स्पष्ट है लोगों का विश्वास था पुण्यकार्य का फल पुण्यफल की प्राप्ति है।

सप्तम अंक में मारीच के तपोवन में शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त उसके पैरों पर गिरकर क्षमा मांगता है[८] तब तब शकुन्तला अपने दुःख का कारण अपने पूर्वकर्मों को ही बताती है- "उत्तिष्ठतु आर्यपुत्रः! नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखमासीत् येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः"।[९] कर्मविपाक (पूर्वजन्म में किए गए कर्मों के फल की प्राप्ति का समय) उस समय लोकप्रचलित धारणा थी।

संस्कृत साहित्य में शापविषयक अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। शाप देने वाला कोई विशेष होता है तो उसका कारण भी विशेष होता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त की स्मृति में डूबी शकुन्तला को दुर्वासा के आगमन का पता ही नहीं चलता। परिणामस्वरूप क्रुद्ध दुर्वासा उस हृदयशून्या को शाप दे देते हैं- "जिसके स्मरण में डूबी तू मेरी उपस्थिति को नहीं जान पा रही है वैसे ही स्मरण दिलाए जाने पर वह तुझे भी भूल जाएगा"।[१०] यद्यपि शाप की परिकल्पना करके कवि ने नायक के चरित्र की रक्षा की है लेकिन यहां ध्यातव्य है कि कालिदास स्वयं भी लोक-विश्वास-मान्यताओं से कुछ न कुछ प्रभावित रहे होंगे। चतुर्थ अंक में दुर्वासा-शाप वाले प्रसंग में 'पुष्पपात्र' का गिरना शकुन्तला के भावी जीवन की घटनाओं का प्रतीकात्मक संकेत है। शकुन्तला के

---

[१] वही, चतुर्थ अंक, श्लोक-४.९-१०, पृष्ठ ६३-६७, प्रथम अंक, पृष्ठ-११ (अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु)

[२] वही, चतुर्थ अंक, श्लोक- ४.५, पृष्ठ ६०-६१

[३] वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ ५३

[४] वही, चतुर्थ अंक, ४.१

[५] वही, पंचम अंक, पृष्ठ ८२

[६] "बालः - मातः, क एषः?" वही, सप्तम अंक, पृष्ठ १२९

[७] वही, सप्तम अंक, पृष्ठ १२९

[८] वही, सप्तम अंक, ७.२४

[९] वही, सप्तम अंक, पृष्ठ १२९

[१०] वही, चतुर्थ अंक, ४.१

सौभाग्यदेवता की अर्चना हेतु[१] जो पुष्प संग्रह किया गया वह पहले ही ठोकर लगकर और हाथ से छूटकर गिर जाता है।

इसके अतिरिक्त उस समय अतिथि को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। अतिथि के आने पर पादोदक, फल आदि प्रदान करके उसका सत्कार किया जाता था। अपमानित अतिथि शाप देने में भी समर्थ था। दुर्वासा का यह कथन- "आ:, अतिथिपरिभाविनि!"[२] जहां इस कथन की पुष्टि करता है वहीं तत्कालीन समय में अतिथि के महत्व को बताता है।

नाटक के चतुर्थ अंक में ऋषि कण्व को आकाशवाणी के माध्यम से शकुन्तला-दुष्यन्त के विवाह की सूचना प्राप्त होती है।[३] स्पष्ट है कि आकाशवाणी में लोगों का विश्वास था। इसी प्रकार धर्म के प्रति भी जन-आस्था दिखती है। समाज में देवी-देवताओं की उपासना भी विहित थी। देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, अमंगल-विनाश के लिए एवं वातावरण की पवित्रता के लिए यज्ञादि[४] अनुष्ठान कराये जाते थे और प्रसाद[५] भी चढ़ाया जाता था। साथ ही व्रत-उपवास भी रखे जाते थे एवं उनका पारणा[६] भी किया जाता था। धार्मिक व्यवस्था व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक थी। उसमें रूढिवादिता एवं कट्टरता बिल्कुल नहीं थी अर्थात् धार्मिक व्यवस्था सुव्यवस्थित एवं अनावश्यक प्रपंच से रहित थी।

तत्कालीन समाज में भूत-प्रेत[७] आदि में लोगों का बहुत विश्वास था। सांसारिक आधि-व्याधि से मुक्ति के लिए, रक्षासूत्र आदि पहनने की प्रथा थी। भरत के हाथ में अपराजिता नामक जड़ी-बूटी का रक्षा-सूत्र बाँधा गया था।[८]

अभिज्ञानशाकुन्तलकालीन समाज में उच्चकुल की स्त्रियों में पर्दा-प्रथा का प्रचलन था। पंचम अंक में शकुन्तला राजसभा में घूंघट निकाले हुए आती है- "का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटतशरीरलावण्या"।[९] बाद में गौतमी गौतमी स्वयं जिसे अपने हाथों से हटाती है- "अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्"।[१०] इसी प्रकार विवाहित परस्त्रियों के प्रति सभ्य एवं शिष्ट व्यवहार अनेक स्थलों पर दिखते हैं। इन नाटक में सर्वत्र शकुन्तला आदि स्त्री-पात्रों के

---

[१] वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ ५३

[२] वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ ५३

[३] वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ ५८ (अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या)।

[४] वही, प्रथम अंक, पृष्ठ ८, तृतीय अंक, पृष्ठ ३८, श्लोक-३.२५

[५] वही, तृतीय अंक, पृष्ठ ४४

[६] वही, द्वितीय अंक, पृष्ठ ३६ (देव्याज्ञापयति, आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति।)

[७] वही, षष्ठ अंक, पृष्ठ ११२

[८] वही, सप्तम अंक, पृष्ठ १२७

[९] वही, पंचम अंक, श्लोक-५.१३

[१०] वही, पंचम अंक, पृष्ठ ८०

प्रति पुरुषपात्रों द्वारा सम्मानजनक संबोधनों का प्रयोग किया जाता है- अनार्य परदारव्यवहारः, अनार्यपरकलत्रदर्शनम्, अनिर्वणनीयं परकलत्रम्।[१]

निष्कर्ष

इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में लोकविश्वास एवं मान्यताओं के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं दिखता। चाहे वह राजप्रासाद से जुड़े लोग हों या सामान्य प्रजा। उपर्युक्त लोकविश्वासों एवं मान्यताओं के आधार पर ही नाटककार ने तत्कालीन समाज को प्रस्तुत किया है। प्रायः ये सारे विश्वास आज भी लोकप्रचलित हैं और समाज के लिए प्रेरक-शक्ति हैं जिससे हम कर्मप्रवृत्त होने की शिक्षा ले सकते हैं।

संदर्भग्रन्थ-सूची

चतुर्वेदी, आचार्य सीताराम, वि. सं.-२०६५. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास-ग्रन्थावली), उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ

द्विवेदी, शिवबालक, २०११. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, हंसा प्रकाशन, जयपुर।

झा, तारणीश, १९८९. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।

द्विवेदी, डॉ० कपिलदेव, २००४. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, रामनरायणलाल विजयकुमार प्रकाशन, इलाहाबाद।

[१] वही, पंचम अंक, पृ ७८